International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5. 12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 138-143

पंचायती राज में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के संदर्भ में

डॉ0 हिमांशु यादव

P.D.F. Department of Political Science, University of Allahabad, Uttar Pradesh, India

प्रस्तावना

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए यह उचित है कि लोकतंत्र एक व्यापक भागीदारी की प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है, जिसमें जमीनी स्तर पर नागरिक, खुद अपने, अपने समुदाय और अपने काम को प्रभावित करने वाले फैसलों में सीधे भाग लें। यह स्थानीय स्तर पर नागरिकों के सशक्तिकरण और सेवाओं के वितरण में उनकी भागीदारी चाहता है, ज्यां द्रेज और अमर्त्य सेन मानते हैं कि स्थानीय लोकतंत्र के अभ्यास भी व्यापक राजनीतिक शिक्षा का रूप है, इसलिए गांव की राजनीति के संदर्भ में, लोगों का संगठित होना, प्राधिकरण के स्थापित पैटर्न पर सवाल करना, अपने अधिकारों की मांग करना, भ्रष्टाचार पैटर्न पर सवाल करना, अपने अधिकारों की मांग करना, भ्रष्टाचार का विरोध करना आदि सीख रहे है। यह सीखने की प्रक्रिया अकेले न केवल स्थानीय लोकतंत्र के लिए बल्कि सामान्य राजनीतिक भागीदारों के लिए उनकी तैयारियों को बढ़ाता है। लोग लोकतंत्र की जड़ हैं, लोगों की भागीदारी सरकार को वैधता प्रदान करती है, हालांकि महिलाएं किसी भी देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा हैं, उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व और भागीदारी निश्चित रूप से काफी कम है। हालांकि नागरिक के रूप में अपने स्वयं को हितों और अधिकारों को बढ़ाने के लिए महिलाओं द्वारा अनौपचारिक राजनीति गतिविधियों की तेजी से वृद्धि होना स्वीकारता है, लेकिन औपचारिक राजनीतिक ढांचे में उनकी भूमिका लगभग अपरिवर्तित बनी हुई है, महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण के मुद्दे ने 1995 में बीजिंग में आयोजित महिलाओं पर चौथे विश्व सम्मेलन के समय महिलाओं के अधिकारों के लिए वैश्विक बहस में रफ्तार पकड़ी।

भारत जैसे विकासशील राज्यों में राजनीतिक भागीदारी एक व्यापक अर्थ रखती है, इसे वोट देने या प्रशासनिक प्रक्रिया का एक हिस्सा होने के अधिकार तक ही सीमित नहीं किया जा सकता, इसके विपरीत कोई भी कार्यवाही जो सार्वजनिक निर्णयों को प्रभावित करने की कोशिश करती है, राजनीतिक भागीदारी को दर्शाता है, राजनीतिक भागीदारी न केवल महिलाओं के हितों को बढ़ावा देने वाले महिलाओं के विकास का प्रतीक है, बल्कि यह राजनीतिक क्षेत्र का एक हिस्सा होने के लिए अन्य महिलाओं को जागरूक बनाता है और संगठित करता है।

भारतीय महिलाएं आजादी से पूर्व से राजनीतिक के साथ संबद्ध रहीं है, वह स्वयंसेवक और नेता दोनों रूपों में स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा थीं, सामाजिक और धार्मिक सुधार और महिलाओं की शिक्षा इस विकास में महत्वपूर्ण कारक थे, 1909 में महिलाओं ने प्रयाग महिला समिति का गठन किया। वर्ष 1928 में सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष चुनी गई थीं। केतकी भट्ट ने साइमन कमीशन का विरोध किया और नमक सत्याग्रह में भाग लिया, एनी बेसेंट, सुश्री विजयलक्ष्मी पंडित, सुचेता कृपलानी और अन्य कई ने अपने तरीके से योगदान दिया, महिलाओं के भारतीय संघ (डब्ल्यूआईए) 1917, भारतीय महिलाओं की राष्ट्रीय परिषद (एनसी0आई0डब्ल्यू) 1926 और अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (एआईडब्ल्यूसी) 1927 जैसे संगठन महिला उत्पीड़न के खिलाफ आवाज के रूप में शुरू हुए और एक मजबूत राष्ट्रवादी भावना विकसित की, हालांकि वे कुलीन आधारित बने रहे।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान का अनुच्छेद 15 कानून के तहत महिलाओं के लिए समानता की गारंटी करता है, हालांकि भारतीय संविधान सभी नागरिकों को समान अधिकार की गारंटी देता है, पर भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में महिलाएं अभी भी मामूली रूप से प्रतिनिधित्व कर रही है, महिलाओं को राजनीतिक अधिकार इन अधिकारों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक शक्तियों के बिना कम है। सामाजिक स्तर पर, संसद, नौकरशाही, न्यायपालिका, सेना और पुलिस में पुरूष प्रभुत्व महिलाओं के हाथों में राजनीतिक सत्ता की कमी की ओर इशारा करता है। यह अक्सर तर्क दिया जाता है कि महिलाओं का राजनीतिक नेतृत्व एक अधिक सहकारी और कम संघर्ष की आशंका वाली दुनिया बनाएगा।

स्वतन्त्रत भारत में पंचायत व्यवस्था

15 अगस्त 1947 को भारत ब्रिटिशा शासन आजाद हो गया। गाँधी का सपना था कि भारत में शासन का विकेन्द्रीकरण हो। उनका मानना था कि केन्द्रीकरण शासन व्यवस्था से हिंसा उत्पन्न होती है। विकेन्द्रीकरण अहिंसा की पहली शर्त है। गाँधी की मान्यता थी कि सत्ता शिखर से नहीं अपितु ग्रामस्तर से शिखर की ओर जानी चाहिए। उनका यह सारा चिन्तन राजनीतिक और सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर जोर देता था।

संविधान निर्मात्री सभा में लम्बी बहस के बाद और डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के प्रभाव के कारण संविधान में भी इसे स्थान प्रदान कर दिया गया। पंचायतों की स्थापना सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान ने राज्य सरकारों के विकास सम्बन्धी योजनाओं की क्रियान्विति की गई। दूसरे शब्दों में यह कहा जाएगा कि पाँचवें दशक में 'सामुदायिक विकास योजना' का भागीरथी प्रयास शुरू किया गया। उसी को सफल बनाने के लिए ग्रामीण क्षेत्र के स्वायत्तशासी संस्थाओं को पुनर्जीवित करने का प्रयास लगता है। स्वतन्त्र भारत में सामुदायिक विकास योजना पंचायतीराज स्थापना का पहला कदम था।[1]

बलवन्त राय मेहत्ता समिति की नियुक्ति सन् 1967 में की गई, जिसका उद्देश्य सामुदायिक विकास परियोजना और राष्ट्रीय सेवा प्रसार योजना का अध्ययन और आँकलन करना था। इसके साथ समिति की योजना की क्रियान्वित करने से समाज पर पड़े प्रभाव, जन–जागृति और ऐसे संस्थागत ढाँचे का प्रारूप भी पेश करना था, जिससे ग्रामीण जगत् में सामाजिक व आर्थिक क्रांति का मार्ग प्रशस्त हो सके। बलवन्तराय मेहता समिति ने तत्कालीन स्थितियों का आँकलन कर विश्लेषित यिका कि विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए जो वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था है वह जनसाधारण में उत्साहवर्धन करने में असफल रही है। कमेटी ने स्पष्ट तौर पर बताया कि ''जब तक हम प्रतिनिधिक एवं जनतांत्रिक संस्थाओं का निर्माण नहीं कर लेते जो स्थानीय हितों का प्रतिनिधित्व करते है और निरीक्षण की ऐसी व्यवस्था जो स्थानीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करते हों, उनके क्षेत्र में जो

धन खर्च किया जाए। उन पर निरीक्षण आवश्यक है।'' इन संस्थाओं को वित्तीय साधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए। तभी जाकर लोक विकास के क्षेत्र में स्थानीय आकर्षण बढ़ सकेगा।[2]

तत्कालीन प्रशासनिक इकाइयों का अध्ययन करने के बाद समिति ने स्थापित इकाइयों के स्थान पर नई संस्थाओं की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया। समिति का मत था कि ''तत्कालीन इकाइयों पर विचार करने के बाद यह बात सामने आई है कि इनके स्थान पर एक प्रतिनिधिक सशक्त जनतांत्रिक संस्था की स्थापना क्यों न की जाए? जो ग्रामीण क्षेत्रों में चल रहे बहुआयामी विकास कार्यो का संचालन करने में सक्षम हो। ऐसी संस्था का निर्माण विधिपूर्वक होना चाहिए जो जनता द्वारा चुनी जाए और उसके कार्य और कर्त्तव्य स्पष्ट परिभाषित हो। ऐसी संस्थाओं को एक कार्यकारी मशीनरी ओर समुचित साधन उपलब्ध कराए जाएँ।'' इतना ही नहीं, ऐसी संस्थाओं पर सरकार अथवा अन्य सरकारी एजेन्सियों पर आवश्यकता से अधिक नियंत्रण नहीं है। उन्हें त्रुअि करने और अपनी गलतियों से सीखने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। किन्तु गलतियों की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए उचित मार्गदर्शन भी देना चाहिए। यह एक ऐसी संस्था होनी चाहिए जो जनता की इच्छा को अभिव्यक्त करती हों।[3]

मेहता समिति का कहना है कि ऐसी स्थानीय निकाय तब ही दक्षतापूर्वक कार्य कर सकती है जब उसके पास विकास योजनाओं को क्रियान्वित करने की पूर्ण शक्ति और अधिकार प्राप्त हो। ऐसे क्षेत्रों में राज्य सरकार को न तो हस्तक्षेप करना चाहिए और न कोई विकास कार्य बिना इनकी सहमति से प्रारम्भ करने चाहिए। मूलतः इन एजेन्सियों को ही ऐसे अधिकार प्रदान करने चाहिए, जो उस क्षेत्र के जनसमुदाय का प्रतिनिधित्व करती हो। मेहता समिति ने मुख्यतः त्रिस्तरीय संस्थागत ढाँचे की सिफारिश की थी– (1) ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत (2) खण्ड स्तर पर पंचायत समिति, (3) जिला स्तर पर जिला परिषद।

पंचायत समिति के सदस्यों के चुनाव ग्राम पंचायतों से कराए और सरकारी संगठनों के सदस्यों को इस समिति में सम्मिलित करने की भी अनुशंसा की। समिति ने पंचायतीराज का मूल आधार ग्राम पंचायत को ही बनाए जाने पर जोर दिया और इन सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर कराए जाने की बात कही। इसके साथ दो महिलाओं और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों का सहवरण करने की अनुशंसा की गई। उनका यह तक कहना था कि पंचायतें अपने कार्य में दक्ष सिद्ध हों। उन्हें ''भूमिकर वसूल करने का अधिकार भी दिया जाना चाहिए।'' ग्राम पंचायतों के बजट पर पंचायत समिति का नियंत्रण और निरीक्षण होना चाहिए। पंचायत समिति के कार्यो को क्रियान्वित करने का दायित्व ग्राम पंचायत का हो। मेहता समिति की सिफारिश के आधार पर यह व्यवस्था सर्वप्रथम राजस्थान में स्वीकार की गई और यहाँ त्रिस्तरीय 'पंचायती राज व्यवस्था' का आगाज हुआ।[4]

पंचायती राज की कार्यप्रणाली और विभिन्न स्तरों पर स्थापित संस्थाओं के कार्यो को सुचारू रूप से चलाने की दृष्टि से राज्य सरकारों के समय–समय पर कई समितियों का गठन किया। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा स्थापित रूरल लोकर सेल्फ गवर्नमेन्ट कमेी 1969, महाराष्ट्र सरकार द्वारा स्थापित नायक कमेटी 1961, कर्नाटक सरकार द्वारा स्थापित समिति 1963, आन्ध्रप्रदेश सरकार द्वारा स्थापित पुरूषोत्तम राव समिति 1965, राजस्थान में सादिक ली समिति 1964, उत्तरप्रदेश में राममूर्ति समिति 1965, आदि इस दिशा में कुछ प्रयास है। इसी तरह उत्तर प्रदेश गोविन्द सहाय समिति 1969, राजस्थान में माथुर समिति 1963, कनार्टक में बासप्पा समिति 1963, हिमाचल प्रदेश में हरदयाल समिति 1965, महाराष्ट्र में वांगीवर समिति 1965 और आन्ध्रप्रदेश में नरसिंहन समिति 1972 इत्यादि प्रमुख है। पंचायतीराज के कार्यकरण की समीक्षा के लिए गठित इन समितियों के अध्ययन करने के बाद यह पता चलता है कि इनके आकलन में काफी भिन्नता होती है। इन समितियों ने अपनी परिस्थितियों को ध्यान में रखकर विभिन्न स्तरों तक सुझाव दिए।

राममूर्ति समिति ने जिला परिषद् के अधिकारों में वृद्धि की अनुशंसा की। हरियाणा की नियुक्त समिति ने जिला परिषद् के अधिकारों को समाप्त करने और पंचायत समिति को सुदृढ़ करने पर जोर दिया। राजस्थान में नियुक्त समिति ने पंचायत समिति की अपेक्षा जिला परिषद् को अधिक शक्तिशाली बनाने की अनुशंसा की।[5]

बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर देश के विभिन्न राज्यों में संस्थागत ढाँचा स्थापित हो गया और शुरूआत में सफलता के साथ उत्साह भी देखा गया। लेकिन सातवें दशक के बाद इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली निराशाजनक दिखाई देती है। राज्यों ने नियमित चुनाव स्थगित कर दिए। कई राज्यों ने समितियों के सुझावों की पालना भी करवाई, लेकिन शासन–प्रशासन ने उपेक्षापूर्ण रवैया ही बनाए रखा। विकास योजनाओं के क्रियान्वयन पर नौकरशाही प्रभावशाली तरीके से हवाी होती नजर आती है। ग्रामीण क्षेत्र में अपेक्षा के प्रतिरूप नौकरशाही का शिंकजा बढ़ता गया और स्थानीय स्वशासन लगभग अन्तिम साँसें गिनने लगा।[6]

सत्तर के दशक में भारतीय राजनीति में काफी परिवर्तन हुए। सन् 1979 तक एकछत्र शासन करने वाली कांग्रेस पार्टी केन्द्र में चुनाव हार गई और उसके स्थान पर जनता पार्टी का शासन आया। नव गठित सरकार को महसूस हुआ कि पंचायतीराज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने के लिए नए सिरे से प्रयत्न किए जाने चाहिए। इसी लक्ष्य को मध्यनजर रखते हुए जनता पार्टी के शासन ने राजनीतिज्ञ व अर्थशास्त्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। समिति ने अध्ययन के बाद पाया कि इन संस्थाओं की असफलता का एक प्रमुख कारण राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव रहा हैं।[7]

कई राज्यों ने पंचायतीराज संस्थाओं के चुनाव बिना किसी कारण के स्थगित कर दिए, जिसके पीछे राजनीतिक अभिजन के उपेक्षापूर्ण रवैये को ही उत्तरदायी पाया। समिति ने यह भी पाया कि संसद व विधानसभा के सदस्य भी इन संस्थाओं के पदाधिकारियों के बढ़ते प्रभाव से भयभीत हैं।

बड़े नेता अपनी लोकप्रियता के लिए खतरा महसूस करने लगे। समिति ने अन्य कई कारणों को उत्तरदायी ठहराया, जिसकी वजह से संस्थाओं का क्षरण हुआ। साथ ही, यह भी सामने आया कि संस्थाओं में सत्ता की प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप उपजी राजनीतिक गुटबाजी, भ्रष्टाचार, कानून के प्रति सम्मान का अभाव राजनीतिक हस्तक्षेप, स्थानीय निष्ठा, सत्ता का मोह और सेवा भावना का अभावआदि कारकों को पंचायतीराज व्यवस्था के कमजोर होने के प्रमुख कारणों को बताया गया।

अशोक मेहत्ता समिति ने अगस्त, 1978 में 132 सिफारिशें सरकार को प्रस्तुत कीं। अपनी अनुशंसा में समिति ने संस्थागत ढाँचे में परिवर्तन के सम्बन्ध में त्रिस्तरीय व्यवस्था के स्थान पर द्वितीस्तरीय पर जोर दिया। वे स्तर थे जिला परिषद् और मंडल स्तर पर पंचायत। त्रिस्तरीय ढाँचे के लिए उनका पूर्वाग्रह नहीं था। समिति का कहना था कि संरचनात्मक स्तर पर चाहे कोई भी स्वरूप स्वीकृत हो हमारी पुख्ता राय है कि इन संस्थाओं में चुने हुए प्रतिनिधियों का प्रभुत्व स्थापित किया जाना चाहिए। साथ ही एस0सी0 और एस0 टी0 वर्ग का भी जनसंख्या के आधार पर समुचित प्रतिनिधित्व इन संस्थाओं में होना आवश्यक हैं।[8]

समिति ने प्रमुख बिन्दुओं को दृष्टिपात किया, जो प्रमुख हैं–

1. जिला परिषद के अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होना चाहिए।

2. पंचायतीराज व्यवस्था में ग्रामसभा की महत्ती भूमिका होनी चाहिए। इससे प्रजातंत्र का आधार तैयार होता है और इसे निरन्तर उत्साहित करना चाहिए। साल में कम से कम दो बैठकें अनिवार्य होनी चाहिए। मंडल पंचायत के सदस्यों को यह दायित्व हो कि वे अपने कार्य का समस्त विवरण ग्रामसभा में प्रस्तुत करें।
3. पंचायतीराज संस्थाओं का कार्यकाल चार वर्ष का होना चाहिए और इनमें निरन्तरता हो।
4. न्याय पंचायतों को अलग इकाई का रूप में स्थापित की जाए।
5. इन संस्थाओं की शक्तियों एवं कार्यकलापों पर प्रकाश डालते हुए यह भी कहा गया कि बदलती परिस्थितियों और नए सन्दर्भो में इन संस्थाओं को व्यापक कार्य सौंपे जाएँ।
6. विकेन्द्रीकरण को 'राजनीतिक सौगात' अथवा प्रशासनिक रियायतों के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए अपितु व्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में अंगीकृत करना चाहिए।[9]

अशोक मेहता समिति की पूरी सिफारिशें लागू नहीं की जा सकीं, क्योंकि इसके पीछे राजनीतिक कारण परिलक्षित हुए। राजनीतिक कुटिलता के कारण यथार्थ के धरातल पर पूरी सिफारिशें लागू नहीं की जा सकीं। सन् 1977 की सत्तासीन जनता पार्टी सरकार सन् 1980 के मध्यावधि में चुनाव हार गई और उसके स्थान पर कांग्रेस (इ) पुनः सत्ता में आ गई। अतः जनता पार्टी की सरकार के नवाचार के प्रयोग स्थगित हो गए। सत्ता परिवर्तन के बाद तत्कालीन सरकार ने छठी पंचवर्षीय योजना की क्रियान्विती प्रारम्भ की। इस योजना में विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को प्रशस्त कर सुदृढ़ करने का प्रसंग पुनः उभरकर सामने आया। पंचायतीराज संस्थाओं के कार्य–संचालन, शक्तियाँ और अधिकारों की बात कही जाने लगी। एकीकृत ग्रामीण विकास योजना और ग्रामण रोजगार योजना के परिप्रेक्ष्य में इन्हें सशक्त बनाने का विचार प्रमुखता से उभरा।[10]

इसी तरह सन् 1983 में हनुमंतराव समिति का गठन किया गया। समिति ने समस्त आकलन करने के बाद जन भागीदारी की ओर ध्यान आकृष्ट किया। समिति ने कहा कि स्थानीय स्तर पर योजना की दृष्टि से जनभागीदारी अति महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु इसे अभिन्न अंग के रूप में देखा जाना चाहिए। सातवीं योजना के वर्णित उद्देश्यों में विकास की नई रणनीति उभरकर सामने आई। इनमें गरीबी उन्मूलन, बेरोजगारी और क्षेत्रीय असंतुलन को समाप्त करने जैसे लक्ष्य रखे गए। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जनभागीदारी की महत्ता को शासन के सर्वोच्च शिखर ने भी स्वीकार किया।[11] योजना आयोग ने सन् 1985 में जी0वी0 के0 राय समिति का गठन किया। समिति ने भी जनभागीदारी पर बल दिया। इसने इस बात पर जोर दिया कि स्थानीय स्तर पर जन भागीदारी को महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग के रूप में देखा जाना चाहिए। पंचायतीराज संस्थाओं को जनभागीदारी वाहक के रूप में उपयोग में लिया जाना चाहिए। समिति के जिला परिषदों को स्थिति को सुदृढ़ करने और नीचे के स्तर पर पंचायतीराज संस्थाओं को विकास कार्यक्रमों की योजना में सम्मिलित करने के सुझाव दिए गए। इसी क्रम में आठवें दशक में गठित डॉ0 लक्ष्मीमल सिंघवी समिति ने पंचायतीराज संस्थाओं की कार्यप्रणाली, व्यावहारिक भूमिका, राजनीतिक और नौकरशाही के उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण और दयनीय स्थिति के मुख्य कारणों पर विस्तार से प्रकाश डाला। समिति ने खुलासा किया कि अधिकांशतः ये संस्थाएँ अवहेलना का शिकार रही है और बहुत ही अपमानजनक स्थितियों में कार्य करती देखी जा सकती है। शुरू के कुछ वर्षो बाद नौकरशाही की भूमिका उत्साहवर्धन नहीं रही और उसने इन संस्थाओं का नजरअंदाज करना शुरू कर दिया। कार्यक्रम पर कार्यक्रम शुरू कर दिए गए लेकिन पंचायतीराज से कोई सरोकार नही रहा। जनता में इनके प्रति उदासीनता, अलगाव और राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

प्रशिक्षण के लिए धन की कमी, राजनीतिक गुटबाजी और शोध और परिशोधन कार्य का अभाव इन संस्थाओं की कमजोर करने में महत्त्वपूर्ण रहा है। दूसरी ओर पंचायतीराज संस्थाएँ स्वयं भी जनशक्ति के माध्यम से शक्तिशाली नहीं बन पाई। ग्रामसभा इस व्यवस्था की आधारभूत संस्था थी। वह जनाधार और स्पंदित वास्तविकता नहीं बन सकीं। इनमें भ्रष्टाचार घर करने लगा। इसमें भी बुरी बात यह हथी कि इन संस्थाओं के नियमित चुनाव कई वर्षो तक स्थगितरहे। चुने हुए पंच, सरपंच निलम्बित कर दिए गए। स्थानीय स्तर पर लोकतंत्र का गला घोटा जाता रहा।

सन् 1986 में गठित एम0एल0 सिंघवी समिति ने भी अनेक महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की, जिनमें स्थानीय सवशासन को कानूनी मान्यता देने, पंचायती राज न्यायिक प्राधिकरण गठित करने और पंचायतीराज में अविलम्ब नियमित चुनाव कराने की सिफारिशें महत्वपूर्ण थी। भारतीय संघीय विषयोंके अध्ययन के लिए गठित सरकारिया आयोगके अध्यक्ष न्यायमूर्ति आर0एस0 सरकारिया ने भी स्थानीय निकायों को आर्थिक रूप से मजबूत बनाने और अधिक से अधिक कार्य सौंपने की अनुशंसा की। इसके बाद सन् 1989 में वी0 एन0 गाडगिल के नेतृत्व में कांग्रेस कमेटी ने त्रिस्तरीय पंचायतीराज के सम्बन्ध में कुछ सिफारिशें कीं। इन सिफारिशों में मुख्य पंचायतराज का कार्यकाल पाँच वर्ष, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं के लिए आरक्षण शामिल है। इनके अलावा पंचायती राजको संवैधानिक दर्जा देने की सिुफारिश की। पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गाँधी ने वर्ष 1987–88 में सम्पूर्ण देश का दौरा किया। उन्होंने महसूस किया कि विकास के लए आवंटित राशि का एक चौथाई हिस्सा भी मुश्किल से ग्रामीण गरीबों तक पहुँच पाता है। परिणामतः परीक्षण के तौर पर सन् 1989 में ग्रामीण नियोजन और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में पंचायत को सीधी जिम्मेदारी सौंप दी गई। जवाहर रोजगार योजना को राष्ट्रीय कार्यक्रम का रूप देते हुए पंचायत को सीधे धन उपलब्ध कराने, ग्रामीण क्षेत्र में आधारभूत सुविधाओं की वृद्धि करने और ग्रामीण गरीबों का जीवन–स्तर सुधारने के उद्देश्य से जवाहर रोजगार योजना की धनराशि के आवंटन के क्रमिक के रूप में वृद्धि की गई। इस कार्यक्रम के तहत पंचायत को यह अधिकार दिया गया कि आर्थिक उत्पादकता वाली योजनाओं का चयन जनता द्वारा किया जाए, योजनाओं का कार्यान्वयन भी लोगों द्वारा किया जाए और इन कार्यो पर ग्रामवासियों द्वारा निगरानी रखी जाए। इस ऐतिहासिक कदम से ग्रामीण स्तर पर जनप्रतिनिधियों को एक नई शक्ति मिली और जनतांत्रिक स्वरूप पर विकेन्द्रीकरण पहली बार हुआ।

64वें संविधान संशोधन विधेयक (1989) का परिवर्द्धित एवं परिमार्जित स्वरूप हैं। वर्ष 1989–91 तक देश में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार रही। राजनीतिक अस्थिरता के उस दौर में प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह और चन्द्रशेखर विशेष योगदान नहीं दे पाए। राजनीतिक अवसरवादिता, समर्थन देने व लेने का खेल भारतीय राजनीतिक रंगमंच पर खेला गया। अन्य पिछड़ा वर्ग आरक्षण और रामजन्मभूमि विवाद के उस दौर में पंचायतीराज आन्दोलन हाशिए पर आ गया। यद्यपि जून, 1990 में वी0पी0 सिंह सरकार ने मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन के बाद सितम्बर 1990 में पंचायतीराज पर संविधान संशोधन लोकसभा में प्रस्तुत किया था। लेकिन, राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार के पतन के कारण वह विधेयक पारित नहीं हो सका। वी0पी0 सिंह पंचायतीराज के मामले में कोई करिश्मा नहीं कर सके। सन् 1991 में पुनः कांग्रेस पार्टी की सरकार आई। 16 सितम्बर, 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पी0वी0 नरसिम्हा राव ने संविधान का 73वां संशोधन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया। यह विधेयक 64वें संविधान संशोधन का थोड़ा–सा सुधरा हुआ रूप था।

64वें संविधान संशोधन विधेयक में त्रिस्तरीय पंचायतीराज का प्रावधान था, लेकिन 72वें संविधान संशोधन में केवल ग्राम पंचायत की ही बाध्यता थी।[12] इस पारित विधेयक को 20 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रपति ने मंजूरी दे दी। तब से यह संविधान 73वाँ संशोधन अधिनियम 1992 के नाम से जाना जाता है। इसे स्वीकृति मिलते ही पंचायतीराज को संवैधानिक दर्जा भी मिल गया।

संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल, 1993 से पूरे देश में प्रभावी माना गया। इसके लागू होते ही माना गया कि देश के सभी राज्य व केन्द्र शासित प्रदेश इस नए अधिनियम के तहत अपना–अपना पंचायतीराज अधिनियम में संशोधन कर लें। अनेक राज्यों ने यह काम अन्तिम दिनों में पूरा किया। संविधान 73वां संशोधन अधिनियम 1992 इस विषय पर मौन है। अधिकतर राज्य/केन्द्रशासित प्रदेशों की सरकारों ने भी इस पर कोई विशेष चर्चा नहीं की। लेकिन स्थानीय निकायों में राजनीतिक दलों की भागीदारी रही। अधिकांश उम्मीदवार किसी न किसी राजनीतिक दल के साथ थे। या उन्हें किसी न किसी राजनीतिक दल का समर्थन प्राप्त था। 73वें संशोधन अधिनियम से प्रथम चुनाव करवाने वाला मध्यप्रदेश है। अनेक राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव परिणामों की घोषणा भी दलीय आधार पर की गई। इसमें पंचायतीराज संस्थाओं का दलीयकरण हुआ है।

पिछड़े वर्गो और महिलाओं के लिए आरक्षण

73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 से विभिन्न वर्गो के लिए आरक्षण के प्रावधान के कारण पंचायतीराज प्रतिनिधियों की सामाजिक संरचना में काफी परिवर्तन लेकर आया। पंचायतीराज प्रतिनिधियों में अब पिछड़ी जाति, अनूसूचित जाति, अनूसूचित जनजाति और महिला प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ी है। पंचायतीराज व्यवस्थाओं से अब तक वंचित रहे लोग राजनीति की मुख्य धारा में आने लगे हैं। लेकिन, अधिकतर महिला प्रतिनिधि अपने पति, ससुर, भाई व पिता के प्रभाव में होकर कार्य करती है। पं0 नेहरू ने ठीक ही कहा था कि ''पंचायत हमारी राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ है। उनकों काम करने दो, चाहे वे हजारों गलतियाँ करें।'' बहरहाल, यह कहा जा सकता है कि गलतियाँ करते–करते और सुधार लाते–लाते एक दिन यही पंचायतें स्वशासन की स्वस्थ एवं सशक्त इकाई के रूप में कार्य करने लगेगी और संविधान की धारा तथा संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम 1992 के माध्यम से पंचायतीराज को सफल बनाने का सपना पूरा हो सकेगा।[13]

73वां संविधान संशोधन

73 वें संविधान संशोधन के साथ ही भारत ने शासन के संस्थागत ढांचे में एक बड़ा परिवर्तन किया, इस संशोधन के साथ गांवों में स्वशासन के लिए शक्ति, प्रदान करने वाले लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रणाली शुरू हुई, जिसका उद्देश्य आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजना बनाने और योजनाओं को लागू करने, स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने के लिए पंचायतों को सक्षम करना था, भारत (अनुच्छेद 243 छ) के संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची पंचायतों को हस्तांतरण के लिए उपयुक्त 29 विषयों की सूची के साथ, संविधान संशोधन अधिनियम ने सभी राज्य सरकारों को इन स्थानीय निकायों को विशेष शक्तियों और जिम्मेदारियों को न्यायगत करने वाले सक्षम पंचायती राज कानून को पारित करने का निर्देश दिया, पंचायतों के लिए इन विषयों में कृषि, भूमि सुधार, लघु सिंर्चा, पशुपालन, मत्स्य पालन, सामाजिक वानिकी, लघु वन उत्पाद, लघु उद्योग, ग्रामीण और कुटीर उद्योग, ग्रामीण आवास, पीने के पानी, ईंधन और चारा, सड़क, विद्युतीकरण, गैर परंपरागत ऊर्जा, गरीबी उन्मूलन, शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण, प्रौढ़ शिक्षा, पुस्तकालय, सांस्कृतिक गतिविधियां, बाजार और मेला, स्वास्थ्य और स्वच्छता, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल विकास, समाज कल्याण, कमजोर वर्गो का कल्याण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली और समुदाय संपत्ति शामिल थे।

अधिनियम आगे पंचायतों में निर्वाचित प्रतिनिधित्व की एक तीन स्तरीय संरचना की बात करता है, जिसमें गांव स्तर, गांवों के एक समूह से बना ब्लॉक (मध्यवर्ती) स्तर और जिला स्तर यानी जिला परिषद, पंचायत समितियां और ग्राम पंचायतें शामिल है जिसमें प्रत्येक स्तर पर कुल सीटों का कम से कम एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित हैं।

महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में वास्तव में भागीदारी विकास के लिए सक्षमता है, स्थानीय स्तर यानी पंचायतों में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण के साथ, यह महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए एक शुरूआत थी, यह वास्तव में खुशी की बात थी कि 2009 में केंद्र सरकार ने पंचायतों के सभी स्तरों में महिलाओं के लिए सीटों के 50 फीसदी आरक्षण के एक संवैधानिक संशोधन को मंजूरी दे दी है, राजनीति में भागीदारी के माध्यम से, महिलाएं आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए सत्ता और संसाधनों का उपयोग कर रही हैं।

पानी की कमी, शिक्षा और नशे का निषेध कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों में से है जो महिलाओं द्वारा निपटाए गए, एक आम नल के माध्यम से पीने योग्य पानी कई गांवो में शुरू किया गया है, हालांकि, जमीनी स्तर पर एक कानूनी उपाय के प्रभावी परिवर्तन में अनुपालन लोकतांत्रिक सामाजिक प्रक्रिया में स्वतंत्र एजेंट के रूप में महिलाओं को सशक्त बनाने में एक प्रमुख मुद्दा बना हुआ है।

महिलाओं का सशक्त प्रतिनिधित्व

जनसंख्या की दृष्टि से, शुरू में ज्यादातर निर्वाचित महिलाएं अपने गांवों में प्रमुख जातियों से थीं, पहली सभी–महिलाओं वाली पंचायत का 1963 में गठन, गांव निंबुत पुणे, महाराष्ट्र में एक धनी और प्रभावशाली परिवार की महिला कमलाबाई की ओर से शुरू किया गया था, अगली सभी–महिलाओं की पंचायत का गठन मौजे रूई, कोल्हापुर, महाराष्ट्र में 1984 में किया गया था, इसमें समाज के दलित वर्गो से महिलाओं को शामिल किया गया। पद्मावती अपने पिता, एक गांव–पुलिसकर्मी के सामुदायिक–काम और गंभीर सूखे और पुरानी पानी की कमी के समय अपने गांव की सेवा करने की उनकी इच्छा से प्रभावित थी। महिला उम्मीदवारों के हार के डर से संभावित पुरूष उम्मीदवारों ने नाम वापस ले लिया है, जिससे वह सभी निर्विरोध चुनी गई। बितर गांव, महाराष्ट्र में महिलाओं की पंचायत शराब की बिक्री पर प्रतिबंध लगाने में सफल रही थी। ध्यान दिया जाना चाहिए कई महिलाओं के लिए पंचायत में निर्वाचित होना ही पितृसत्ता के लिए एक चुनौती है, महिलाओं को लगा कि उन्होंने समुदाय के भीतर मान्यता और सम्मान साथ ही जागरूकता और अधिक विश्वास प्राप्त कर लिया है, कई महिलाओं ने परिवार के भीतर बढ़ी स्थिति और प्रभाव की सूचना दी, उड़ीसा के दूरदराज के एक जनजातीय क्षेत्र में एक पंचायत की मुखिया निशिका सावित्री ने तालाबों और आम के बागों को पट्टे पर देने की पहल के द्वारा पंचायत की आय बढ़ाने के लिए कदम उठाए थे, उसने स्वच्छता ` साथ ग्रामीण लोगों की बुनियादी जरूरतों स्नान और शौचालय की सुविधा को सुनिश्चित किया, उसने अन्य सामाजिक कल्याण योजनाओं जैसे गरीबी उन्मूलन, विधवा पेंशन और वृद्धावस्था पेंशन योजना का ख्याल रखा।

कई मामलों में, ग्राम सभा में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई है, और वे वास्तव में ग्राम सभा में सामाजिक कारणों के लिए बोलती है, मध्यप्रदेश में, महिलाएं सतर्कता समितियों का हिस्सा है और यह बताया जाता है कि महिलाएं कुछ स्थानों में सतर्कता समिति के

सदस्यों के बीच सबसे मुखर है।

कमला महतो बांदों, पश्चिम बंगाल में पंचायत की निर्वाचित प्रधान है, गांव में पानी की गंभीर कमी को दूर करने लिए महतो ने गांव में 10 नलकूपों को लगवाया था, उसने लाभदायक मुर्गी पालन, डेयरी और पशुधन उद्यम शुरू करने के लिए गांव की महिलाओं के लिए सरकारी ग्रामीण आजीविका कार्यक्रम के तहत ऋण की व्यवस्था की।

एक अन्य संबंधित घटनाक्रम में पता चला है कि उत्तर–राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (नरेगा) योजना से लाभान्वित महिलाओं में कम वित्तीय निर्भरता दिखाई दी है, इससे ग्राम सभा की बैठक में महिलाओं की भागीदारी में सकारात्मक वृद्धि हुई है, लगता है उत्तर–नरेगा काल में ग्राम सभा की बैठकों का आयोजन ही अधिक नियमित घटना हो गई है। महिलाओं की एक बड़ी संख्या ने भी ग्राम सभा की बैठकों में अपने विचारों का प्रसारण शरू कर दिया है।

देर से ही सही, हरियाणा में जिला जींद के बीबीपुर गांव में, महिलाओं को शामिल कर पहली खाप–महापंचायत का आयोजन किया गया, गांव की महिला–ग्राम सभा ने कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ अपने अभियान के लिए समर्थन की तलाश में 360 खाप नेताओं को आमंत्रित किया, 200 से अधिक महिलाओं ने बैठक में भाग लिया और गांव में कन्या भ्रूण हत्या को प्रोत्साहित करने वालों के खिलाफ हत्या के आरोप लगाने की मांग का प्रस्ताव पारित कर दिया, पंचायत ने कन्या भ्रूण हत्या जिसे एक जघन्य अपराध करार दिया, के खिलाफ एकजागरूकता अभियान शुरू करने का निर्णय लिया है।

निष्कर्ष

पंचायतीराज में लोकतंत्र को समाज की जड़ों तक ले जाने की कोशिश महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के बिना सम्भव नहीं हो सकती। पंचायतीराज अधिनियम में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई थी और महिलाएँ पंच–सरपंच चुनी गई, लेकिन आज भी चुल्हे–चौके से आगे नहीं बढ़ पाई है। ग्राम पंचायत में यदि सरपंच महिला है तो एस0पी0 (सरपंच पति) का पद अपने आप सृजित हो जाता है। वहीं कई जगह एस0डी0एम0 (सरपंच दा मुंडा) भी पंचायतीराज के कार्यो में दखलंदाजी कर रहा है। ऐसे में अफसरशाही के लिए तथाकथित 'एस0पी0' और एस0डी0एम0 की राय लेना जरूरी हो जाता है तो आमजन भी अपना जनप्रतिनिधि उन्हें ही मानता है। पंचायतीराज ने उन्हें घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर महिलाओं को वार्ड पंच, सरपंच, पंचायत समिति सदस्य, प्रधान, जिला परिषद सदस्य और जिला प्रमुख का दर्जा दिया गया। विडम्बना यह है कि अधिकांश जगह इनका काम उनके सम्बन्धी पुरूष ही देखते हैं। आज भी जिले में होने वाली अधिकांश बैठकों में महिलाओं की मौजूदगी अक्सर नगण्य है। यदि महिलाएँ आती भी है तो उनकी आवाज कभी घूँघट से बाहर ही बहुत कम आ पाती है। पंचायती चुनावों के समय यह देखने में आता है कि समाज के प्रभावशाली व्यक्ति अपनी पत्नी, बहिन, माँ या किसी अन्य सम्बन्धी महिला को चुनाव में उम्मीदवार के रूप में खड़ा कर देते हैं, जो बाद में उन्हीं के इशारे पर कार्य करने को मजबूर होती हैं। महिलाओं को अपने संवैधानिक अधिकारों का उपयोग करने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है यदि हम पंचायतीराज अधिनियम पर नजर डालें तो उसमें महिलाओं के लिए आरक्षण आविश्वास प्रस्ताव, धारा 40 के अन्तर्गत भ्रष्टाचार को रोकने जैसे प्रावधान तो है लेकिन महिला पंचायत प्रतिनिधियों को अपना दायित्व निभाने में बाधा उत्पन्न करने वालों के लिए किसी भी तरह की कार्यवाही के प्रावधान नहीं हैं।[14]

तमाम आलोचनाओं के बावजूद इसमें कोई शक नहीं है कि देश में महिलाओं का सशक्तीकरण हुआ है। पंचायतों में महिलाओं का आरक्षण तथा कई तरह की विधिक एवं आर्थिक सहायता से उनका हौसला बढ़ा है। संसद में विधान मंडलों में भी देर सवेर महिलाओं को आरक्षण मिलना ही है। इसके बाद कई समस्याएँ तो अपने आप ही खत्म हो जाएँगी। आखिर जहाँ सत्ता होगी वहाँ सम्मान और हौंसला तो अपने आप ही मिलता। इन सबके अलावा शिक्षा के प्रसार के कारण आज की औरत इन सब कठिनाइयों से लड़ना जानती है। स्त्री और पुरूष को मिलाकर देश के लिए, दुनिया के लिए और समाज के विकास के लिए काम करना है। यह बात चाहे किसी और को पता हो या नहीं लेकिन महिलाएँ इस जिम्मेदारी को बखूबी समझती है। अपने अधिकारों से वंचित महिलाओं को आगे लाना समाज के समक्ष एक गंभीर चुनौती हैं।

पंचायतराज को सशक्त तथा महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिए भाषणों से ज्यादा जमीनी धरातल पर उन्हें मजबूत बनाए जाने की जरूरत है। ग्रामीण अंचल में लोकतंत्र की पहली पाठशाला के रूप में पहचान बनाने वाला पंचायतीराज जब सच्चे अर्थो में अपने मकसद को पाने में कामयाब होगा, तभी भारत में लोकतंत्र मजबूत फलीभूत होगा। राजनीतिक स्वार्थो को नजरअंदाज करके यदि पंचायतों को अपने तरीके से काम करने के अवसर मुहैया कराए जाएँ तो 50 साल पहले देखा गया सपना जल्द ही पूरा हो सकता है। नागौर में पंचायतीराज की स्वर्ण जयन्ती पर 02 अक्टूबर, 2009 को हुए सम्मेलन में जिन मुद्दों को उठाया गया है, ईमानदारी से उन पर अमल करने की जरूरत है। हर अच्छी शुरूआत के पीछे सार्थक सोच का होना जितना जरूरी है, उस सोच के क्रियान्वयन का भी है। ढाई लाख पंचायतों के माध्यम से देश के 'गाँवों की सरकार' अपने तरीके से देश के प्रति और स्थानीय लोगों को स्वावलम्बी बनाकर उसमें राजनीतिक जागरूकता पैदा करने का काम कर रही है। 73वें संविधान संशोधन के जरिए पंचायतीराज को 29 विषय हस्तान्तरित करने का प्रावधान किया गया था। फिर सवाल उठता है कि हम 16 विषयों तक सीमित क्यों हो रहे हैं? हो सकता है कि सांसद और विधायक यह नहीं चाहे कि जिला प्रमुख, प्रधान और सरपंच भी ताकतवर हो जाए, नौकरशाही का नजरिया भी कोई बहुत अच्छा नहीं है। ऐसे में क्रियान्वयन पर पैनी निगाह रखनी होगी। इस पर गौर करना होगा कि जो विषय या काम हस्तान्तरित हो उससे जुड़े मद का पैसा और प्रशासनिक मशीनरी भी साथ में सुपुर्द की जाए। अन्यथा इस तरह की आशंकाएँ भी सही साबित हो जाएँगी कि पंचायतों के कमजोर कंधों पर ज्यादा बोझ लाद दिया है। इसके साथ ही देश में आधी आबादी महिलाओं की है फिर महिलाओं को स्वयं निर्णय लेने में क्या बाधा उत्पन्न की जा रही है और हिंसापूर्ण व्यवहार व दबाव की राजनीति क्यों की जा रही है। अतः महिलाओं की जो अधिकार या पद दिया गया है। उस पर उन्हें स्वतंत्र रूप से तथा स्व–निर्णय लेने में बाधा उत्पन्न नहीं की जानी चाहिए। वे अपने निर्णय व स्वावलम्बन से समाज को सद्गति प्रदान कर सकने में सक्षम हो सकती हैं। उन्हें आवश्यकतानुसार परामर्श देना तो उचित है लेकिन दबाव में कोई कार्य करवाना न्यायोचित नहीं हैं।

सन्दर्भ सूची

1. भटनागर, एस, 'रूरल लोकल गवर्नमेन्ट इन इंडिया', लाइफ एण्ड लाइट पब्लिशर्स, नई दिल्ली संस्करण–1978, पृ0 27.
2. मेहता, बलवंतराय, 'रिपोर्ट ऑफ दि टीम फॉर दि स्टडी ऑ कम्यूनिटी डेवलपमेन्ट प्रोजेक्टस एण्ड सर्विसेज', वोल्यूम, संस्करण–1958, पृ0 4.
3. मेहता, बलवंत, रिपोर्ट ऑफ दि टीम फॉर दि स्टडी ऑफ कम्यूनिटी डेवलपमेन्ट प्रोजेक्टस एण्ड सिर्वसेज, वोल्यूम 1, संस्करण–1958, पृ0 6.

4. मेहता, बलवंत, 'रिपोर्ट ऑफ दि टीम फॉर दि स्टडी ऑफ कम्यूनिटी डेवलपमेन्ट प्रोजेक्ट्स एण्ड सिर्वसेज', वोल्यूम 1, संस्करण–1958, पृ0 128.
5. राव.एल.एस.माधव, 'पंचायतसः प्रोसपेक्टस एण्ड रिट्रोस्पेक्ट कुरूक्षेत्र', वोल्यूम 36, नं0 9,फरवरी 1978, पृ0 60.
6. होवे, इंदिरा, 'पंचायतीराज एट क्रासरोड्स', इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिक्स वीकली, वोल्यूम 24, नं0 29, जुलाई–1989, पृ0 42.
7. मेहता, अशोक, 'रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑन एडमिनीस्ट्रेटिव एर्जेमेंट ऑफ रूरल', रिपोर्ट 1978, पृ0 7.
8. मेहता, अशोक, 'रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑन एडमिनिस्ट्रेटिव एजेमेंट ऑफ रूरल', समिति रिपोर्ट–1978, पृ0181.
9. मेहता, अशोक, 'रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑन एडमिनिस्ट्रेटिव एर्जेमेंट ऑफ रूरल', समिति रिपोर्ट–1978, पृ0 183.
10. गुरू, डी0डी0, 'न्यू इकोनॉमिक पॉलिसी इनिशियेटिक :पंचायतीराज अमेंडमेंट, एक्प्लाइमेंट', न्यूज वीकली, 29 जुलाई, 1989, पृ0 2.
11. रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी टू रिव्यू दि एक्जिसटिंग एडमिनिस्ट्रेटिव एडजेस्टमेंट फॉर रूरल डवलपमेंट एण्ड पावर्टी एलिवेशन प्रोगाम्स डिपार्टमेंट ऑफ रूरल डवपमेंट गवर्नर ऑफ इण्डिया, दिसम्बर 1985, पृ0 46.
12. कटारिया, सुरेन्द्र, 'पंचायतीराज संस्थाएँ : अतीत, वर्तमान और भविष्य', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2007, पृ0 32.
13. रमेश कुमार, '73वें संविधान संशोधन अधिनियम', 1992, कुलक्षेत्र, अप्रैल 1996, पृ. 2.